बारीक माई—जादू की गोली

दूसरे दिन यानी १६ दिसम्बर, सन् १९३५ ई. माँ के भोजन का दिन है। सवेरे कुछ फल और मिठाई लेकर आश्रम गया। काफी लोग माँ को घेरकर बैठे थे। कुछ देर मैदान में टहलने के बाद माँ वापस आयीं। आकर अपनी कुटिया के पूर्ववाले बरामदे में बैठीं। इधर–उधर की बातचीत के बाद बारीक माई की चर्चा चल पड़ी।

बारीक माई एक पंजाबी महिला हैं। उनका वास्तविक नाम मुझे नहीं मालूम। माँ उन्हें बारीक माई कहती हैं। महिला विधवा हैं। वे इतनी मोटी हैं कि उन्हें मांस का पिण्ड ही कहा जा सकता है। वहीं उन्हें लोग मोटकी न कहें इसलिए माँ बारीक (दुबली) माई कहती थीं।

यद्यपि बारीक माई पढ़ी–लिखी नहीं थीं, तथापि भाषण वे धारा प्रवाह देती थीं। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों कांग्रेस की कार्यकर्ता थीं और सर्वत्र भाषण देती रहती थीं। गीत, कविता आदि बना लेती थीं। माँ के प्रति एक कविता बनायी थीं। उसमें एक लाईन का आशय यह था – 'अपने शरीर के चाम से तुम्हारा जूता बनाऊँगी।' इस तरह के गीत वे उच्च स्वर से गातीं तथा अध्यात्म रामायण वे इतने जोर से गातीं कि लोग मैदान छोड़कर भाग जाते थे। इसके कारण उनका खूब मजाक उड़ाया जाता था। लेकिन वे इन बातों की परवाह नहीं करती थी। ऐसी दृढ़ संकल्पवाली महिला थीं।

कांग्रेस में उनका कार्य करना लोगों को पसन्द नहीं था। जब घर के लोग समझाते–समझाते हार गये तब एक दिन उन्हें दोतल्ले के एक कमरे में बन्द कर बाहर से ताला लगा दिया। उनसे कहा गया कि जब तक वे इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करेंगी कि आगे कांग्रेस के कार्यक्रमों में भाग नहीं लेंगी तब तक ताला नहीं खोला जायगा। उन्होंने भी खाना–पीना–सोना बन्द कर दिया। कमरे में रखे सामानों को तोड़ने–फोड़ने लगीं। फिर भी उन्हें मुक्त नहीं किया गया।

जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इस कार्यवाही से उन्हें मुक्त नहीं किया जायगा तब वे दोतल्ले से कूदकर सीधे कांग्रेस दफ्तर पहुँच गयीं। अपने विशाल शरीर को लेकर दोतल्ले से कूदने में उन्हें जरा भी भय नहीं लगा। 'मंत्र की साधना या शरीर का पतन' यही उनके जीवन का मूल सूत्र था। कांग्रेस के कारण एक बार जेल की सजा भुगत चुकी हैं। जेल में जाकर वे गर्दभ स्वर में इस तरह गाने लगीं कि लोगों की नींद हराम होने के अलावा जेलों में बन्द रहना कठिन हो उठा। जेल के अधिकारी लाख प्रयत्न करके भी उनका गाना रोक नहीं सके। उन लोगों के धमकाने पर वे बोलीं – 'तुम लोगों ने मेरे हाथ–पैर बाँध रखा है, पर मेरी जबान को बन्द नहीं कर सकते। मैं चिल्लाऊँगी तुम लोगों की जो इच्छा हो, कर सकते हो।'

अन्त में अधिकारियों ने उन्हें छोड़ दिया। जेल से बाहर आकर बारीक माई ने 'सत्संग' का गठन किया। वहाँ सदालोचना, सद्ग्रन्थ का पाठ होता था। निश्चित दिन भजन–गीत होते थे। इसी प्रकार सदालोचना में अपना दिन गुजारने लगीं।

माँ ने मुझसे कहा–'जिन दिनों मैं हृषीकेश में थी, उन दिनों अक्सर मेरे पास आया करती थी। उसे मेरे पास आते देखकर उसके सत्संग के साथियों में से कोई पूछता कि तुम उस बंगाली महिला के पास क्यों जाती हो ? क्या तुम नहीं जानती कि बंगाली औरतें जादू जानती हैं। ये लोग मंत्र के जरिये मनुष्य को भेड़ा बना देते हैं। यह सब सुनते हुए भी वह मेरे पास बराबर आती रही। जब उसने यह अनुभव किया कि यहाँ आने से कोई लाभ नहीं है। तब मेरे यहाँ उसका आना–जाना बन्द हो गया।'

''एक बार शारदा कुछ दिनों की छुट्टी लेकर मेरे पास आयी। उसकी इच्छा हुई कि बारीक माई के गीत और पाठ सुनना चाहिए। वह उसकी तलाश करने लगी। एक दिन हम लोग पूर्णानन्द स्वामी

के यहाँ जा रहे थे। अचानक रास्ते में बारीक माई के साथ मुलाकात हो गयी। शारदा उसे पूर्णानन्द स्वामी के आश्रम में ले गयी। इसके बाद से वह बराबर मेरे यहाँ आने का नशा उसपर सवार हो गया। उन दिनों भी उसकी सहेलियाँ मेरे यहाँ आने को मना करती थीं, पर उसने इस पर ध्यान नहीं दिया। वह केवल मेरे पास आती ही नहीं थी, बल्कि मेरे यहाँ खाती, सोती तथा मेरे पास बैठी रहती थी। इस प्रकार चुपचाप रहना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। लेकिन कर भी क्या सकती थी। मेरा साथ छोड़कर कहीं जा नहीं पाती थी। उसके स्वभाव में इस प्रकार का परिवर्तन देखकर लोग विस्मित हो गये। यहाँ तक कि वह स्वयं भी कम विस्मित नहीं हुई।''

''इधर मैं जिस प्रकार एक दिन के बाद एक दिन आहार करती हूँ, वह भी उसी प्रकार करने लगी। मेरी मनाही उसने माना नहीं। लोगों के निकट मैं जादू जानती हूँ सुनकर तथा अपने में परिवर्तन देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि सचमुच में मैं जादू जानती हूँ। उसने सुना था कि रात को मैं जमीन से शून्य में उठ जाती हूँ। इस बात को देखने के लिए वह अक्सर रात को जागकर देखा करती थी। लेकिन इतना श्रम करने पर भी वह कुछ देख नहीं पायी। इसके बदले रात को मेरे साथ बातचीत करते रहने पर वह इतना समझ गयी कि मैं रात को सोती नहीं। तब उसने सोचा कि मैं सजग रहती हूँ, इसलिए ये शून्य में आती-जाती नहीं। फलतः रात को बैठी न रहकर वह नींद का बहाना बनाकर चुपचाप मुझ पर सतर्क दृष्टि रखने लगी। कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो जाने पर अनाहार और अनिद्रा के कारण वह काफी दुबली हो गयी। यहाँ तक कि एक दिन उसकी स्थिति नाजुक हो गयी। हाथ-पैर ठंडे हो गये, मुँह से गों-गों आवाज करने लगी। उसकी ऐसी हालत देखकर मैंने ज्योतिष से कहा-'इसकी हालत बहुत खराब है। आग लाकर जरा इसे सेंक दो और इसके शरीर पर हाथ फेर दो ।'

'ज्योतिष उसके बदन पर हाथ रखने के बाद बोला – माँ, इसे बुखार हुआ है।'

मैंने कहा–इसे बुखार नहीं है। तू सिर्फ बदन पर हाथ फेर दे।'

ज्योतिष मेरी आज्ञा के अनुसार हाथ फेरने लगा। लेकिन मैने देखा कि वह भय से इतना सिकुड़ गया कि उससे सेवा करना असंभव हो उठा। काँपते–काँपते अवश हो गया। यह देखकर मैं स्वयं उसके बदन पर हाथ फेरने लगी।

ज्योतिष ने मुझसे कहा–'जरा देखिये, उसकी सांस चल रही है या नहीं ?'

मैंने देखा कि उसकी सांस धीरे–धीरे चल रही है। अन्त में वह एकदम बन्द हो गयी। बहरहाल कुछ देर बदन पर हाथ फेरने के बाद उसकी हालत सुधरी। उसने आँखें खोलकर देखा। यह देखकर ज्योतिष ने आयुर्वेदिक दवा की दो गोलियाँ उसे खाने को दी। यह दवा ज्योतिष को गोपालजीने दी थी। देहरादून में जब यह बीमारी के कारण काफी दुर्बल हो गया था तब उसे सबल बनाने के लिए यही दवा दी गयी थी। शायद उक्त दवा की कुछ गोलियाँ अभी तक उसके पास थीं। यह दवा खाने के बाद वह कुछ स्वस्थ हुई। इस प्रकार रात गुजर गयी। दूसरे दिन सारी घटना उसे बताने के बाद कहा गया कि अगर रात को आगे से नहीं सोओगी तो मेरे निकट तुम नहीं रह पाओगी। उसने स्वीकार किया कि अब सो जाया करेगी।

''इस घटना को सुनकर उसकी सहेलियाँ कहने लगीं–'अभी तक तू यह नही समझ सकी कि बंगालिन मायाविनी ने तुझे जादू की गोली खिलायी है।' तेरा शरीर इसीलिए इतना खराब हो गया है।''

यह सब बातें सुनने तथा अपने शरीर की हालत देखकर उसे विश्वास हो गया कि शायद मैंने कुछ किया है। उसने मेरे निकट आना बिलकुल बन्द कर दिया। कुछ दिनों बाद अपना बिछौना आदि लेने

के लिए आयी। उस समय हम लोग हरिद्वार जाने को तैयार हो रहे थे। हम लोगों के लिए बस आ गयी थी। उसे देखते ही मैंने पूछा– 'क्यों माताजी, तुम्हारा जादू दूर हुआ ?'

यह सुनकर उसने सोचा कि मैं सब जानती हूँ, सब देख लेती हूँ झट मेरे पैरों को पकड़ती हुई बोल उठी–'माँ, मैं तुम्हारे साथ हरिद्वार चलूंगी।'

मैंने कहा–'अगर तुम यहाँ से चली न गयी होती तो मेरे साथ चल सकती थी। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। हमारी गाड़ी तैयार है और एक भी सीट खाली नहीं है।'

उसे छोड़कर हम लोग हरिद्वार चले आये। बाद में वह मेरे पास आयी थी। लेकिन उसे अपने पास न रखकर मैंने उसे उसके घर भेज दिया। बाद में वह समझ गयी कि वह जो अस्वस्थ हुई थी, जादू के कारण नहीं, बल्कि आहार–निद्रा त्याग के कारण हुई थी। अब तो तुम लोग सुन चुके कि कैसे बंगाली मायाविनी जादू की गोली खिलाती हैं। पर यह भी जान लो कि शुद्ध भाव से एक लक्ष्य होना भी एक जादू की तरह है। अगर वह भाव एक बार आ जाता है तब उसे हटाया नहीं जा सकता।''

आज बहुत से लोगों ने बाबा भोलानाथजी से दीक्षा ली। दोपहर से दीक्षा–दान आरम्भ हुआ। जब मैं शाम के समय पहुँचा तबतक दीक्षा का कार्यक्रम चलता रहा। शिव मन्दिर के भीतर मां तथा बाबा भोलानाथ बैठे थे, द्वार पर स्वामी शंकरानन्द जी थे। दीक्षाप्रार्थी एक–एक कर भीतर जा रहे थे। हम लोग मैदान में बैठे थे। रात को ७ बजे मां और बाबा भोलानाथ दीदी मां के यहाँ आहार करने गये। जब वे लोग वापस आये तब हम लोग नामघर के पास जाकर खड़े हुए। ठीक इसी समय भूपति बाबू ने आकर मुझसे कहा कि ढाका विश्वविद्यालय के भूतपूर्व इलेक्ट्रिशीयन स्वर्गीय सरोज बांधव घोष महाशय की पत्नी

मां के साथ मुलाकात करने आयी थीं। उनके बारे में मां से कहने पर मां ने कहा कि वह आकर उनसे कोई सवाल न पूछे वर्ना मां के मुँह से कोई बात नहीं निकलेगी।

मैंने भूपति बाबू से पूछा–"इसका वजह क्या है, इस बारे में आपने मां से क्यों नहीं पूछा?"

उन्होने कहा कि इस ओर उनका ध्यान नहीं गया। बाद में पूछुँगा।

अनाहत ध्वनि, योग विभूति

कुछ देर बाद मां नामघर में आयीं। लड़कियां एक-एक कर मां को प्रणाम करने के बाद जाने लगीं। जब लड़कियों की संख्या घट गयी तब भूपति बाबू ने मां से पूछा–"मां, तुमने तब कहा था कि कोई जब तक तुमसे कुछ नहीं पूछता तब तक तुम्हारे मुँह से कुछ नहीं निकलता। इसका कारण क्या है?"

मां–देखो, एक ध्वनि अनवरत मेरे भीतर होती रहती है। उस ध्वनि में एक चोट लगकर जब एक और ध्वनि नहीं होती तबतक मैं कुछ भी नहीं सुन पाती और न मेरे मुँह से कोई शब्द निकलता है। जब कोई प्रश्न पूछा जाता है तब उस ध्वनि पर आघात लगती है। उस वक्त उसी के अनुसार मेरे भीतर से एक उत्तर आता है।

कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कोई अपना कहता जा रहा है और मुझे नहीं दे रहा है। लगता है जैसे वह बड़बड़ाते हुए न जाने क्या कह रहा है। दूसरी ओर अगर कोई मन–ही–मन प्रश्न पूछता है तब मैं उसे उसी ढंग से जवाब देती हूँ। ऐसे प्रश्न या उत्तर दूसरा कोई नहीं सुन पाता। अक्सर ऐसा भी होता है कि मैं बात करती जा रही हूँ और उपस्थित लोग इन्हीं बातों के बीच अपनी–अपनी समस्याओं का उत्तर पा लेते हैं। मौखिक या मन में बिना प्रश्न किये ही अपने संशय का समाधान कर लेते हैं।

मुझे लक्ष्य करती हुई बोलीं–पिताजी ने मुझे नीचे उतरकर जवाब देने को कहा है, इसीलिए मैं नीचे उतर कर जवाब दे रही हूँ। साधना करते करते ऐसी स्थिति हो जाती है कि अगर कोई साधक के सामने आकर खड़ा हो जाता है तो उसके मन के भाव अपने–आप साधक के मन के भीतर तैरने लगते हैं। वह अपने मन का भाव जिस प्रकार समझ लेता है, ठीक उसी प्रकार दूसरों के भाव को भी समझ लेता है। कौन क्या भाव लेकर आया है, इसे वह उसके मुँह को देखते ही समझ लेता है। कण्ठस्वर सुन कर भी समझ लेता है। तुम लोगों ने देखा होगा कि शिशु बातें नहीं कर पाता, पर बुजुर्ग उसके हाव–भाव को देख कर उसके मन के भावों को समझ लेते हैं, ठीक इसी प्रकार जो लोग साधन–भजन करके उच्च स्तर तक पहुँच गये हैं, वे लोग हमारे जैसे बच्चों के हावभाव और दृष्टि से मन की बात समझ लेते हैं।

ये सब साधन की स्थितियाँ हैं। प्रत्येक साधक को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है। जब साधक को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है तब उसे खूब आनन्द मिलता है। यह आनन्द भी शक्ति के विकास के लिए है। कारण विभूतियाँ भगवान् की शक्ति के अलावा और क्या हैं। साधक साधना के बल से जिस परिमाण में विशुद्ध भाव प्राप्त करता है, उसके हृदय में उसी परिमाण में शक्ति का विकास होता है। लेकिन इन शक्तियों को प्राप्त करने के बाद उसे प्रकट नहीं करना चाहिए। जितना अपने–आप प्रकट हो जाता है, उससे क्षति नहीं होती। लेकिन साधक प्रायः अपनी इच्छा से उसे प्रकट कर देते है। इससे उसी का नुकसान होता है और आगे वह साधना–पथ पर अग्रसर नहीं हो पाता। विभूति प्रकट होने के साथ–साथ अगर अहंकार या प्रतिष्ठा की भावना उत्पन्न होती है तब वह साधना का अन्तराय हो जाता है। दूसरी विभूति प्राप्ति का आनन्द अगर साधक को साधना–पथ पर उत्साहित करता रहे तो दो–चार विभूति अपने–आप प्रकट हो जाने पर भी साधक का

कोई नुकसान नहीं होता। वह क्रमशः उच्च स्थिति से और उच्च स्थिति तक पहुँच सकता है।

अहंकार और प्रतिष्ठा साधना के प्रधान अन्तराय हैं। इसके आने पर विभूतियां नहीं रहतीं। तब यह समझने की जरूरत नहीं कि कोई पूर्ण विभूति बिना प्राप्त किये, साधना के अन्तिम छोर तक बिना गये उसे दूसरों को नहीं दे सकता। जैसे इंट्रेस पास करने के बाद नीचे के दर्जे के लड़को को पढ़ाया जा सकता है। इसीलिए अनेक साधु साधना की चरम सीमा तक न पहुँच कर भी अपने द्वारा उपलब्ध साधन धन अपने–अपने शिष्यों को देते हैं।

साधकों में जिन विभूतियों का विकास होता है, उसके भी कारण हैं। विभूति प्राप्त करना साधक के संस्कारों से होता है। तुमने सुना होगा कि अक्सर कुछ लोग कहते हैं–'अगर मुझमें इस तरह की शक्ति होती जिसके द्वारा मैं रोग दूर कर सकता तो मैं संसार में व्याप्त रोगजनित दुःखों को दूर कर देता।'

कुछ लोग अपने सुनाम और प्रतिष्ठा के लिए इन शक्तियों की आकांक्षा रखते हैं। उन लोगों के इन आकांक्षाओं से जिस संस्कार की सृष्टि होती है, वही पुनःसाधना के मार्ग में विभूति के रूप में दिखाई देती है। वह देखता है कि इतने दिनों से जिस शक्ति की आकांक्षा वह करता रहा, अब वह उसके पास आ गयी है। यही शक्ति ही तब साधना में विघ्न उत्पन्न करती है। इससे साधक का पतन हो सकता है। लेकिन साधक अगर इसमें आबद्ध न होकर साधना के मार्ग पर बढ़ता जाय तब यह सब विभूतियां लय हो जाती हैं। यहाँ लय हो जाने का यह अर्थ नहीं है कि वह नष्ट हो जाती हैं। विभूति उस समय साधक का स्वभाव बन जाता है।

प्रमथ बाबू–विभूति प्राप्त होने के बाद उसका पतन न हो, इसका उपाय क्या है?

माँ–वही बताया न, एक लक्ष्य में रहना चाहिए। लक्ष्य की ओर दृष्टि रखकर साधक चलता रहे तो उसका पतन नहीं होता। विभूति के आने पर उसे लेकर मगन न होकर साधना के मार्ग पर चलते रहने से विभूति और उसका अन्तराय नहीं होता। इसीलिए देखा जाता है कि अधिकतर साधकों की दो–एक विभूतियाँ प्रकट होकर रुक जाती हैं और साधक चरम अभीष्ट प्राप्त करता है।

मैं–माँ, विभूति स्वभाव में चली जाती है, इसका क्या अर्थ है?

माँ–मान लो एक व्यक्ति ने देवी–साधना आरम्भ की और इस साधना के जरिये उसने देवी को प्राप्त किया। इस प्राप्ति को हम खण्ड प्राप्ति कहेंगे तथा इसमें से जो विभूति प्रकट होगी, वह भी खण्ड विभूति होगी। लेकिन यही देवी भाव जब अखण्ड रूप से प्राप्त होगा तब भी विभूति रहेगी। उसे हम अखण्ड विभूति कहेंगे। यह अखण्ड विभूति, विभूति नहीं है। यह स्वभाव है। इसलिए उत्तम विभूति प्रकाश है स्वभाव विभूतिमय होना। स्वभाव ही विभूति, विभूति ही स्वभाव है।

मैं–विभूति में स्थिति प्राप्त करना, यह क्या है?

माँ–खण्ड विभूति प्राप्त करना ही विभूति में स्थिति प्राप्त करना। स्थिति प्राप्त करना कहने पर यह मत समझना कि विभूति चिरस्थायी हो गयी है, कारण विभूति चिरस्थायी हो नहीं सकती जबकि वह संस्कार पर निर्भर करती है। पर हम इस अर्थ में स्थिति कहते हैं कि साधक उस पर खड़ा है। वे अब साधना–पथ पर नहीं चल रहे हैं। मान लो तुम दालान से छत पर जाओगे। छत पर चढ़ने के लिए कुछ सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। अब कल्पना करो कि छत साधक का चरम अभीष्ट है और सीढ़ियाँ नाना प्रकार की विभूतियाँ। साधक छत पर चढ़ते–चढ़ते किसी सीढ़ी पर खड़े हो जाते हैं तब हम कहेंगे कि उन्होंने विभूति में स्थिति प्राप्त की है। अब वे साधना–मार्ग पर नहीं चल रहे हैं। इस स्थिति को प्राप्त करते ही पुनः गिर जाने की आशंका बनी रहती है। पतन होगा ही, ऐसी बात नहीं है, पर सम्भावना बनी रहेगी।

भूपति बाबू ने जब यह प्रश्न किया तब मैं वहाँ खड़ा था। सोच रहा था कि अगर माँ का उत्तर अस्पष्ट या संक्षिप्त हुआ तो मैं अधिक देर न रुककर घर चला जाऊँगा। मुझे खड़ा देखकर माँ ने कहा– "पिताजी तुम खड़े क्यों हो? शायद तुम जाना चाहते हो, इसीलिए पीछे खड़े हो?"

मैं–देखूँ, क्या होता है।

माँ–पिताजी के जाने का एक निर्दिष्ट समय है। इसे मैंने गौर किया है। जब वह समय आ जाता है तब पिताजी ठहरना नहीं चाहते।

नगेन बाबू–अच्छी बातें होने पर अमूल्य बाबू ठहर जाते हैं। जब बेकार बात होने लगती है तब चले जाते हैं।

माँ–नहीं, अच्छी बातों के बीच भी वे चले जाते हैं। शायद अक्सर अनिच्छा के साथ प्रतीक्षा करते हैं, फिर चले जाते हैं। यह पिताजी की एक आदत है। यह अच्छा है। (मुझसे) अच्छा, पिताजी, तुम ऐसा क्यों करते हो? बोलो? (हँसकर) बोलो? आज तुम्हें अच्छी तरह समझ समझ लेना चाहती हूँ। काम रहता है शायद इसलिए चले जाते हो? या यह सोचते हो कि माताजी घर पर बैठी होंगी?

मैं–तुम्हीं तो सब कह रही हो, मैं क्या बोलूँ?

माँ हो–हो कर हँस पड़ी और बाद में कहने लगीं–"तब और कुछ नहीं कहूँगी।"

इसके बाद विभूति बाबू के प्रश्न के उत्तर में विभूति के बारे में जो चर्चा चली थी बताने लगीं। निशि बाबू मेरे पास आकर बोले– "माँ से पूछिये कि साधना में पतन हो जाने पर क्या पुनः उठा जा सकता है?"

मैं–माँ, तुम्हारा एक लड़का यह जानना चाहता है कि अगर साधना करते–करते किसी का पतन हो जाय तो क्या पुनः उठा जा सकता है या नहीं?

माँ–गिरने पर उठना होता है। असल चीज तो चढ़ने–उतरने के बाहर है। (निशि बाबू से) पिताजी अपना प्रश्न स्वयं क्यों नहीं करते ?

मैं–माँ, लोग जब कचहरी में मुकदमा दायर करते हैं तब वे स्वयं जज से बहस कर सकते हैं, फिर भी लोग वकील के पास जाते हैं। उसी प्रकार जो व्यक्ति तुम्हारे निकट अनवरत बक–बक करता रहता है, प्रश्न करने की इच्छा लेकर उसके पास जाता है। यह स्वाभाविक है।

मेरी बात सुनकर माँ तथा निशि बाबू हँस पड़े।

माँ–तुम भी गम्भीर हो। अधिक बात नहीं करते। आजकल दो–चार बातें कहने लगे हो।

इन बातों के बाद प्रमथ बाबू से माँ ने गाने को कहा। प्रमथ बाबू ने भाव–विभोर होकर तीन गीत गाये। गीत समाप्त होने के बाद माँ ने कहा–भूपति पिताजी, अब तुम जा सकते हो। अमूल्य पिताजी, आप भी अब जा सकते हैं।

हम लोग माँ को प्रणाम करने के बाद विदा लेकर चले आये।

१७ दिसम्बर, सन् १९३५ ई. मंगलवार को आश्रम जाकर देखा कि श्री श्री माँ मैदान में घूमने गयी हैं। कुछ देर बाद मां वापस आयीं। हम लोग नामघर में जाकर बैठ गये। सी.आई.डी. इंस्पेक्टर श्रीयुक्त जितेन्द्रधर महाशय माँ से प्रश्न पूछने लगे।

जितेन बाबू–संसार में सुखी कैसे रहा जा सकता है ?

माँ–सं (बहुरूपी) बनकर रहने से संसार में सुखी रहा जा सकता है. देखते नहीं, लोग नाना प्रकार के वेष धारण कर सं बने रहते हैं, लेकिन सं बनने पर भी वे लोग अपना स्वरूप नहीं भूलते। हम लोग सं बनते नहीं, सं को हम सब सार बनाते हैं, इसलिए हम संसारी हैं। जिन लोगों को लेकर हम गृहस्थी चलाते हैं, उन लोगों को भी

यदि हम सं की तरह अनित्य समझ लें तभी हम संसार में सुखी हो सकते हैं।

जितेन बाबू–अगर हम लोग संसारी बनकर सुखी और सन्तुष्ट रहें तो इसमें दोष क्या है?

माँ–मैं दोष के बारे में नही कह रही हूँ। अगर उसमें डूबकर रहा जाय तो अच्छा है। लेकिम डूबकर रहा नहीं जा सकता। डूबने से दम घुटने लगता है और हम हाँफ उठते हैं। देख लो, तुम लोग पोशाक वगैरह पहन कर निकलते हो। कुछ देर बाद पोशाक के भार से अस्थिर हो उठते हो। उसे उतारने के लिए बेचैन हो जाते हो और उतारने के बाद आराम पाते हो। उसी प्रकार मनुष्य स्वभावतः मुक्त है। वह मुक्त रहना पसन्द करता है। बन्धन से परेशानी महसूस करता है। यही वजह है कि संसारी बनने आकर वह गृहस्थी में रहना नहीं चाहता। गृहस्थी के बन्धन उसे बेचैन कर देते हैं। वह मुक्ति पाने के लिए छटपटाता है। एक बात और है। सभी आनन्द और शान्ति चाहते हैं। मनुष्य का स्वभाव ही आनन्द का स्वभाव है। वह इसी आनन्द में स्थिति प्राप्त करना चाहता है। इसलिए आनन्द की तलाश में चक्कर काटता है। अगर उसके भीतर आनन्द का यह ज्ञान न होता तो आनन्द की तलाश क्यों करता? अगाध आनन्द की अनुभूति उसके भीतर है, इसीलिए तो संसार–बंधन उसे कष्ट देते हैं। जीव भाव ही बद्ध भाव है। इस बद्ध भाव से मुक्त होने के लिए जीव आनन्द में स्थिति प्राप्त करता है।

जितेन बाबू–कुछ लोगों का मत है कि पूर्वजन्म नहीं होता। हम लोग भी यह अनुभव कर रहे हैं कि पूर्वजन्म में क्या थे या नहीं थे, यह हम लोगों को स्मरण नहीं है। ऐसी हालत में इस जन्म के वैषयिक सुख को लेकर क्यों न आनन्द मनाये? यह तो हम लोगों को सुख दे रहा है। हम लोग क्यों धर्म–धर्म करें?

माँ–यह बात सही है कि पूर्व जन्म में हम लोगों ने क्या किया है, यह स्मरण नहीं है, पर उसकी एक छाप हमारे ऊपर है। जैसे अक्सर ऐसा होता है कि कैसे हमारे हाथ–पैर जल गये, यह हमें स्मरण नहीं रहता। लेकिन जलते के दाग रह जाते है। वह हमें यंत्रणा देता है। ठीक उसी प्रकार पूर्व जन्म में मैंने क्या किया है, यह स्मरण नहीं रहता, फिर भी पूर्वजनित एक यंत्रणा हममें है। इसके अलावा स्मृति नामक एक चीज है अर्थात् हम लोगों की कभी ऐसी हालत थी कि जब कोई यंत्रणा नहीं थी, उस अवस्था की एक स्मृति भी हमारे पास है। इसीलिए हम लोग ज्वाला–यंत्रणा से मुक्ति चाहते हैं। अगर यह न होता तो शान्ति–मुक्ति की तलाश न कर पाते। तुम अगर इस संसार को लेकर सुखी हो सकते हो तो तुम्हें अभाव बोध नहीं होगा। लेकिन तुम आज जो कुछ सवाल कर रहे हो, उससे यह समझ में आ रहा है कि तुममें अभाव बोध है। अगर ऐसा न होता तो यह सवाल क्यों उठता। शरीर धारण करने पर शरीर का भोग है। पोशाक पहनने पर पोशाक की यंत्रणा होती है। कम–से–कम पोशाक की रक्षा करने के लिए एक चिन्ता होती है। वही तब यंत्रणा देती है। गृहस्थी करने पर ज्वाला–यंत्रणा आयेंगी। इसलिए यह प्रयत्न करना चाहिए जिससे इस यंत्रणा से सामयिक रूप से नहीं, हमेशा के लिए शान्ति प्राप्त हो सके।

जितेन बाबू–इस संसार में रहते हुए अगर संसार के सुखों को पकड़े रहने की चेष्टा करूँ तो सब हो जायगा।

माँ–पकड़ने का प्रयत्न करने पर खोना पड़ेगा। मैं जिस सुख के बारे में कह रही हूँ, उसे पकड़कर रखा नहीं जा सकता। वह अपने आप होता है और हमेशा के लिए होता है। यहाँ आनन्द चेष्टासाक्षेप नहीं है। आनन्द इसका स्वभाव है। विषय का आनन्द चेष्टासाक्षेप तथा वह खण्ड एवं क्षणस्थायी होता है। सच्चिदानन्द आनन्द चिरस्थायी। हमें

इस आनन्द को छोड़कर ऊपर उठना होगा। वह बात की बात है। इस समय यही कहा जा सकता है कि हम लोग संसार में जो आनन्द पा रहे हैं, उससे स्थायी आनन्द हमारे भीतर है। उसी में हमें स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जितने बाबू–तो क्या गृहस्थ–धर्म कुछ नहीं है?

माँ–किसने कहा कि कुछ नहीं है। अगर वह नहीं है तो हम आये कहाँ से? कुछ भी आसमान से न तो टपकता है और न जमीन फोड़ कर निकलता है। पर हम लोग ठीक–ठीक गृहस्थ धर्म का पालन कहाँ करते हैं? पहले चार आश्रम था। जिसमें प्रथम है–ब्रह्मचर्य। आजकल वह है नहीं, ऐसा कहा जा सकता है। उसके न रहने से ही सभी आश्रमों में गण्डगोल हो गया है। गृहस्थ का अर्थ मैं यह समझती हूँ कि गृह को हस्तगत करना। पर हम गृह को हस्तगत नहीं करते, बल्कि गृह ही हमें हस्तगत कर रहा है।

जितेन बाबू–शान्ति प्राप्ति के दो उपाय हैं। प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग। हम निवृत्ति मार्ग की और क्यों जायेंगे?

माँ–मार्ग केवल एक ही है। निवृत्ति मार्ग की और प्रवृत्ति मार्ग, इसीलिए कहती हूँ कि त्याग नाम का कुछ नहीं है। है केवल भोग। मानव खण्ड भोग से परिपूर्ण भोग की ओर अग्रसर हो रहा है।

ठीक इसी समय ७।। की घंटी बजी। मेरे लिए ठहरना कठिन हो गया। कालेज चल पड़ा। तीसरे प्रहर आश्रम में आकर देखा कि महिलाएँ माँ को इस प्रकार घेरकर बैठी हैं कि उस व्यूह को भेदकर कोई भी पुरुष मां के पास पहुँच नहीं सकता। मैदान में बैठकर हम लोग गप लड़ाने लगे। शाम होने के कुछ पहले मोती बाबू आये। सुना कि मोती बाबू सवेरे सिद्धेश्वरी आश्रम में शिवजी के कमरे में जूता पहने माँ से मिलने के लिए चले गये थे। इस तरह प्रवेश करते समय किसी के निषेध की परवाह उन्होंने नहीं की।

मोती बाबू के साथ हम बातचीत करने लगे। वे माँ के आकर्षण में कैसे आ गये, इसकी कहानी सुना रहे थे। उन्होंने कहा–"मैं बचपन से मातृहीन हूँ। फलतः बचपन से ही मातृ–स्नेह का बुभुक्षु हूँ। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि बचपन में मुझे अपने लोगों से स्नेह नहीं मिला। स्नेह पर्याप्त मिला है। लेकिन उसका आतिशय्य मुझे यह स्मरण कराता रहा कि यह आन्तरिकता शून्य है। कहीं मुझे अपनी माँ की याद न सताये, इसलिए लोग मुझे अधिक प्यार देते थे।"

"एक दिन प्रमथ बाबू ने मुझसे आनन्दमयी माँ की चर्चा की। मैंने पहले से ही निश्चय कर लिया था कि मैं आनन्दमयी को 'माँ' नहीं कहूँगा और न प्रणाम करूँगा। लेकिन इन्होंने मुझे जबरन 'माँ' कहने को मजबूर किया।"

"माँ सुन्दरी हैं, इसलिए नहीं। मैं अनेक सुन्दरी महिलाओं के चित्र विलायत में देख चुका हूँ। लोव्रे में जितने चित्रों के संकलन हैं, उन्हें भी देखा है। उन सबकी तुलना में मां सुन्दरी नहीं है। लेकिन इनके चेहरे पर सरलता–मण्डित स्निग्ध भाव है जो वास्तव में दुर्लभ है। इनकी हँसी भी अपूर्व है। इस प्रकार की खिलखिलाहट देखने में नहीं आती। इस हँसी में मां का प्रत्येक अंग–प्रत्यंग सहयोग देता है।"

"प्रथम दिन जब आया तो मां के साथ जमकर बात किया था, बाद में फिर कोई बात नहीं हुई। इस पर मां ने कहा था कि मेरा मुँह वे बन्द करवा चुकी हैं। यह बेकार की बात है। मैं जान बूझकर बातें नही करता। मैं निर्वाक् होकर इनका देव–दुर्लभ दर्शन करता हूँ। ये जो कुछ बातें कहती हैं, वह सब मेरे कानों तक नहीं पहुँचतीं।"

"पिछले सोमवार को कचहरी का काम समाप्त होने के बाद मैं प्रमथ बाबू के साथ आश्रम में आया। प्रमथ बाबू की लड़की ने एक गुलाब का फूल दिया। मैंने उक्त फूल मां को दिया। मां फूल अपने हाथ में लेती हुई बोलीं–'जो व्यक्ति मुझे 'माँ' कहकर नहीं पुकारेगा, यह निश्चय कर चुका है, उसने आज यह फूल दिया है।"

"बाद में वह फूल बेबी दीदी को देती हुई मां बोली–'यह मेरा आदर का फूल है। इसे जतन से रख दो।' इतना कहने के बाद एक कहानी कहने लगीं। उससे यह पता चला कि मां ने किसी को एक गुलदस्ता दिया था। उसने उसे ताले में बन्द कर रखा था। वह गुलदस्ता न जाने कैसे अदृश्य हो गया। यह सब बेकार की बातें हैं। बहरहाल बेबी दीदी को फूल दे देने के कारण मैं नाराज हो उठा। सोचा–'अगर तुम मेरी मां बनोगी तो तुम्हें कुछ भी क्यों न दूँ, उसे बड़े स्नेह से रख दोगी। इस वक्त तो देख रहा हूँ कि दूसरे को दिया। इसी क्रोध के कारण मैंने बेबी दीदी से कहा–'आप घर जाकर इस फूल को पाखाने में फेंक दीजियेगा।'

'मेरी बात सुनकर मां कुछ देर तक मेरे मुँह की ओर देखती रहीं। बाद में बेबी दीदी से बोलीं–फूल मुझे दो। मैं खा जाऊँ।'

बेबी दीदी ने फूल से एक पंखुड़ी निकालकर माँ के मुँह में डाल दी। तब मां ने सभी को एक–एक पंखुडी देने को कहा। अन्त में बेबी दीदी को घुण्डी चबाकर खानी पड़ी। यह देखकर मैंने सोचा कि जब मेरे दिये हुए फूल को इतने आदर के साथ खा गयीं तब यह जरूर मेरी मां हैं।

"आज सवेरे माँ के पास गया था। जूता पहने शिवजी वाले कमरे में मां को प्रणाम कर आया हूँ। तीसरे पहर मां को दो रुपये देने गया था। जब माँ के हाथ में रुपया देने गया तो माँ ने नहीं लिया। अखण्डानन्द स्वामी ने कहा कि माँ रुपया–पैसा स्पर्श नहीं करती। तब उन दोनों रुपयों को माँ के पैरों के पास फेंककर चला आया। उन दोनों रुपयों में एक रुपया गूंगा था। शास्त्र में है कि एक वृक्ष पर दो पंक्षी रहते थे। इनमें एक फल खाता और एक केवल टुकुर–टुकुर देखा करता था। मेरे दोनों रुपये भी इसी प्रकार के हैं। जो बेकार का है; वह वही है जो पक्षी फल खाता है और गूँगा वह है जो फल नहीं खाता, सिर्फ देखता रहता है।"

आज माँ के साथ बातचीत नहीं हो सकेगी, समझकर दूर से प्रणाम करने के बाद चला आया।

१८ दिसम्बर, सन् १९३५ ई., बुधवार को सवेरे आश्रम में जाकर देखा–ढाका के हेल्थ अफसर श्रीयुक्त प्रतापचन्द्र सेन और उनकी पत्नी आयी हैं। श्रीयुक्त प्रमथ बाबू तथा मोती बाबू भी मौजूद थे। कुछ देर बाद मां टहलने निकल गयी। हमलोग भी पीछे–पीछे चल पड़े। प्रमथ बाबू माँ को लेकर आगे–आगे चल रहे थे। मैंने सोचा कि शायद कोई गोपनीय बात कर रहे होंगे। तभी प्रमथ बाबू ने इशारे से मुझे साथ जाने को कहा।

प्रमथ बाबू कह रहे थे–"माँ, मोती को मैं तुम्हारे पास ले आया हूँ। अगर उसका कोई अमंगल हुआ तो तुम्हारी बदनामी होगी। मैं अपने बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। तुम मोती को देखना।"

प्रमथ बाबू की बातें सुनकर मुझे ज्योतिष बाबू की बातें याद आ गयीं। एक दिन रात के समय बारीक माँ की हालत देखकर ज्योतिष बाबू भी इसी प्रकार डर गये थे। एक तो हृषीकेश में इस बात का प्रचार हो गया था कि माँ जादू जानती है। अब अगर माँ के पास रहते हुए बारीक माई मर जाती हैं तो बड़ी बदनामी होगी। इस चिन्ता के कारण ज्योतिष बाबू उस रात को बुरी तरह डर गये थे।

प्रमथ बाबू की बातें सुनकर माँ मेरी ओर देखने लगीं। माँ की दृष्टि से मुझे ऐसा लगा कि मैं क्या चिन्ता कर रहा हूँ, शायद वह समझ गयी हैं। हम हँस पड़े। मन–ही–मन प्रमथ बाबू की प्रशंसा करने लगा। दूसरों के दुःख में जिनका प्राण गल जाय, उससे बढ़कर महान् व्यक्ति कोई नहीं हो सकता।

ठीक इसी समय मोती बाबू ने आकर पूछा–"माँ, क्या मैं अब जा सकता हूँ?"

माँ–तुम्हारी इच्छा।

मोती बाबू–मेरी इच्छा नहीं है, पर एक व्यक्ति (अर्थात् प्रताप बाबू[1]) मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह न तो यहाँ आयेगा और बिना मुझे साथ लिए वह जायेगा भी नहीं।

मैं–माँ, मैं प्रताप बाबू को तुम्हारे पास बुला लाऊँ?

माँ–तुम लोगों के निकट मैं माँ हूँ। वह तो मुझे माँ नहीं कहेगा।

बहरहाल प्रताप बाबू को माँ के पास ले आया।

माँ–(प्रताप बाबू से) पिताजी, तुम तो मुझे माँ कहोगे नहीं, पर मैं तुम्हारी बेटी हूँ। बेटी का एक अनुरोध तुम्हें मानना पड़ेगा।

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगीं। धीरे–धीरे प्रताप बाबू की ओर बढ़कर उन्होंने प्रताप बाबू को स्पर्श किया। इस तरह माँ को स्पर्श करते देख मैंने प्रताप बाबू को भाग्यवान समझा। कारण माँ स्वेच्छा से किसी को स्पर्श नहीं करतीं।

माँ–(हँसकर) बोलो पिताजी, इस बेटी का एक अनुरोध मानोगे। जिस प्रकार तुम घर–गृहस्थी के कार्यों में मन लगाते हो, उसी प्रकार उनके कार्य में मन लगाया करो। तुम लोग अपनी ड्यूटि[2] नहीं करते? उसी प्रकार उन्हें बुलाना भी एक ड्यूटि है, मान लेना। बोलो पिताजी, यह करोगे? इस पगली बेटी का यह अनुरोध स्वीकार करोगे?

प्रताप बाबू–चेष्टा करूँगा।

माँ–चेष्टा नहीं, बोलो, जरूर करूँगा। देखो, तुम लोग जो कुछ कह रहे हो, वह अभाव का कार्य है। खाना, पीना, टहलना, अर्थ–उपार्जन ये सब अभाव के कार्य हैं। इससे अभाव बढ़ता जाता है। उन्हें पुकारने पर अभाव नहीं रहता। तब स्वभाव में प्रतिष्ठित हुआ जा सकता है। तुम जो कुछ कर रहे हो, वह उन्हीं का कार्य है, कारण

१. प्रताप बाबू मोती बाबू के बहनोई हैं ।

२. श्री श्री माँ आजकल दो–एक शब्द अंग्रेजी कह लेती हैं । पश्चिम में रहने के कारण हिन्दी भी बोलती हैं ।

जगत् में केवल वे ही हैं। पत्नी के रूप में भी वही, कर्तव्य के रूप में भी वही। लेकिन इधर लक्ष्य रखना चाहिए। इसीलिए कहती हूँ कि जिस प्रकार जीवन के सभी कर्म नियमानुसार कर रहे हो, उसी प्रकार नियम से कुछ देर उन्हे बुलाओ। क्यों, कर सकोगे पिताजी?

प्रताप बाबू–अच्छा बुलाऊँगा।

माँ–(मोती बाबू से) पिताजी, तुमसे भी कह रही हूँ कि तुम इन लोगों (अर्थात् प्रताप बाबू आदि) की बातें सुनना। कभी अबाध्य मत होना। अपने को शान्त, स्थिर रखने का प्रयत्न करना। तुम हर समय अपने को स्थिर नहीं रख पाते। स्थिर भाव से बिना किये, कोई कार्य सफल नहीं होता।

मोती बाबू–मैं तो इन लोगों की बात मानता हूँ। तुम मुझे स्थिर क्यों नहीं कर देती?

माँ–अपने को स्वयं स्थिर करने की चेष्टा करो। शान्त भाव बगैर आये शान्ति नहीं मिलती।

इतना कहने के बाद माँ आगे बढ़ गयीं। हम लोग पीछे–पीछे चल पड़े। प्रताप बाबू और उनकी पत्नी घर चले गये।

आश्रम में लौटने पर दीदीमा से भेंट हुई। कल दीदीमां रक्षाकाली की पूजा कर चुकी हैं। यह पूजा आम तौर पर श्मशान में होती है। लेकिन माँ की इच्छा के कारण आश्रम में हुई है और बाबा भोलानाथ ने पूजा की है।

मैं–(दीदीमाँ) दीदीमां, मेरी प्रसादी है न?

दीदीमाँ–प्रसादी तो है। क्या उसे तुम खाओगे?

मैं–ऐसा क्यो? प्रसाद क्यों नहीं खाऊँगा?

दीदी मां–एक तो खिचड़ी की प्रसादी, दूसरे ठंढी। इसीलिए कह रही थी कि तुम खाओगे या नहीं।

मैं शिव शंकर बाबू को लेकर भोगवाले कमरे में जाकर प्रसाद खाने बैठ गया। दीदी मां ढेर खिचड़ी परोस दीं। मैंने खाना प्रारम्भ किया। ठीक इसी समय न जाने कहाँ मां आ गयीं।

बोलीं–पिताजी, मुझे जरा दोगे?

मां की आवाज सुनते ही चौंककर पीछे की ओर देखा। तबतक मां अखण्डानन्द स्वामी के कमरे में चली गयीं। शिव बाबू ने मां को आते देखा था, इसीलिए वे विस्मित नहीं हुए, लेकिन मैं मां की आवाज सुनकर चौंक उठा था।

इसके बाद मां के भोग का प्रबंध होने लगा। काफी लोग मीठा, संतरा आदि लेकर मां को भोग चढ़ाने लगे। एक–एक व्यक्ति भोग चढ़ाते गये और हम प्रसाद ग्रहण करते रहे। सवेरे का भोजन इसी प्रकार हो गया।

लगभग ८ बजे मां नामघर में आयीं। एक बालिका ने मां को गीत सुनाया। मधुर गीत था। इस गीत को सुनकर नगेन बाबू रो पड़े। देर होते देख मैं मां को प्रणाम कर चला आया।

तीसरे पहर जाकर देखा कि चारों ओर अपार भीड़ है। आज खिचड़ी और मिठाई का भोग मां को दिया गया है। शायद इसी उपलक्ष्य में इतनी भीड़ है। प्रमथ बाबू और मोती बाबू भी दिखाई दिये। सुना कि मां मैदान में पेड़ के नीचे सोती रहीं। एक वृद्धा मां को भोग चढ़ाने के लिए अस्थिर हो उठीं। वे सभी से अनुरोध कर रही थीं कि कोई मां को बुला दे तो वे भोग चढ़ाकर चली जातीं। उनके लिए घर जाना आवश्यक है। मां को जगाने के लिए मोती बाबू ने भ्रमर से अनुरोध किया था, पर जब वह राजी नहीं हुई तब स्वयं उन्होने मां को जगाया। सुना कि मां बिना कुछ बोले जल्दी से आश्रम में चली आयी थीं।

खुकुनी दीदी भ्रमर से बातचीत कर रही थीं। वे और ज्योतिष बाबू आज चटगाँव से आये है। खुकुनी दीदी के मुहँ से तारापीठ के बारे में बातें सुनने लगा। सुना कि इस बार एक दिन तारापीठ में मां की हालत गम्भीर हो गयी थी। वे कभी रोती और कभी हँसती रहीं। मां का यह भाव देखकर सभी के होश फाख्ता हो गये थे, क्योंकि मां में यह भाव बहुत दिनों से देखा नहीं गया था। मां ने शायद यह कहा था कि शरीर न जाने कैसा-कैसा कर रहा है। बाद में तारा मन्दिर जाकर काफी देर तक सोती रहीं।

अन्त में जागकर जब उठीं तब खुकुनी दीदी से बोलीं-"तुम लोग अगर मुझे शरीर में रखना चाहती हो तो जो कुछ कहूँगी, वह करना पड़ेगा।"

मां की इन बातों को सुनकर सभी लोग सन्न रह गये। सभी नीरव रूप में मां को देखने लगे। कुछ देर इसी प्रकार बीत गया।

एकाएक मां ने कहा-"चलो, कीर्तन सुनें।"

इस वक्त नाट मन्दिर में खूब धूमधाम के साथ कीर्तन हो रहा था। कीर्तन में कुछ देर बैठने के बाद मां पुनः खड़ी हुई और ज्योतिष बाबू के पास आकर बोलीं-"अभी चटगांव चलूँगी।"

ज्योतिष बाबू ने कहा कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है।

मां ने कहा-"अगर तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है तो खुकुनी को साथ ले लो। अभी तुरंत चलना है।"

मां ने अखण्डानन्दजी से कहा-"पिताजी, खुकुनी को ज्योतिष के साथ भेजने से तुम्हें कोई आपत्ति है?"

स्वामीजी–मां, यह तो तुम्हारा आदेश है, इसमें किस बात की आपत्ति है? अगर ज्योतिष अस्वस्थ है तो एक पुरुष के जाने से अच्छा होता।

मां–खुकुनी तो पुरुष है ही। वह ब्रह्मचारी है। पुरुष के अलावा और क्या है?

यह घटना रात की है। मां ने तुरंत पण्डा से पूछा–"आज सबेरे तुम्हें गाड़ी ठीक करके रखने को कहा था। क्या तैयार है।"

पण्डा–हाँ, मां, गाड़ी तैयार है। हुक्म होते ही मैं ले आऊँगा।

उसे गाड़ी लाने को कहा गया। दीदी ने कहा–"हम दो प्राणी चुपचाप गाड़ी पर जाकर बैठ गये। इस समय मां को ऐसा रूप दिखाई दे रहा था कि अगर समस्त विश्व आकर बाधा देना चाहता तो मां को रोका नहीं जा सकता था।"

आगे खुकुनी दीदी कहानी बताने जा रही थी कि ठीक इसी समय नगेन बाबू आकर दीदी को भीतर बुला ले गये। दीदी की कहानी अधूरी रह गयी। आज इतने दिनों बाद समझ सका कि उस दिन बाबा भोलानाथ ने क्यों मां को मन्दिर के बाहर सोने पर आपत्ति कर रहे थे। उन्हें भय हुआ था कि कहीं मां वहां देहत्याग न कर दे।

तारापीठ की हालत देखकर लोगों ने यही सोचा था। बाबा ने हम लोगों के लिए ही आपत्ति प्रकट की थी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

शाम तक मैदान में था। शाम के बाद चिन्ताहरण बाबू का कीर्तन प्रारम्भ हुआ। मां औरतों से घिरी हुई कीर्तन सुनने लगीं। हम लोग नामघर में जाकर खड़े हो गये। उस दिन का कीर्तन जम नहीं रहा था। सभी लोग मां की बात सुनने को व्यग्र थे, कीर्तन में मन कैसे लगता?

१९ दिसम्बर,१९३५ ई., गुरुवार। मां इस दिन ढाका से पुनः रवाना हो जायेंगी। सबेरे से ही भीड़ बढ़ने लगी। भोर के समय जाकर देखा कि मां अन्नपूर्णा मन्दिर के बरामदे पर बैठी हैं। मां के चारों ओर काफी लोग हैं। मैं एक किनारे जाकर बैठ गया। एक लड़का मां से प्रश्न पूछ रहा था।

जातिभेद

बालक–शास्त्रों में जाति भेद का उल्लेख है। लेकिन हम लोगों के विचार से सभी मानव बराबर हैं। मानव–मानव भेद करना ठीक नहीं है। इसलिए मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जाति भेद न मानने पर क्या पाप होता है?

माँ–अगर शास्त्र की बात तुम नहीं मानना चाहते तो स्वयं ही शास्त्र क्यों नहीं लिख लेते।

बालक–वह क्षमता हममें नहीं है, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि जातिभेद न मानने पर पाप होता है या नहीं?

माँ–सन्देह रहने पर पाप।

बालक–जाति भेद न मानना दोष नहीं है, इस विषय के बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं है।

माँ–(हँसकर) तुम तो ब्रह्मज्ञानी लगते हो।

स्वामी शंकरानन्द–ब्रह्मज्ञान न होने तक संदेह रहता है।

माँ–बिना सन्देह के प्रश्न क्यों करते हो? संशय के बिना जिज्ञासा नहीं होती। संशय रहने पर पाप–पुण्य का प्रश्न उठता है।

श्री श्री माँ को देह पर रखने की जिम्मेदारी हम पर

इसी समय प्रमथ बाबू ने कहा–"माँ, अब काम की बातचीत की जाय। तुम पुनः ढाका आओगी या नहीं, यह बताओ।"

माँ–तुम लोग लाओगे तो आऊँगी।

प्रमथ बाबू–यह सब हवाई बातें नहीं सुनना चाहता। तुम स्वयं निश्चय करके बताओ कि तुम आओगी या नहीं?

सुरेन बाबू[1]–आपने पिछली बार कहा था कि पुनः मैं आऊँगी। इस बार कुछ कहकर जायें।

माँ–मैंने कहा था कि मैं पुनः आऊँगी?

सुरेन बाबू–हाँ ।

मां ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया। समझते देर नहीं लगी कि सुरेन बाबू ने गलत कहा है। माँ भविष्य में क्या करेंगी या क्या नहीं करेंगी, इसका इङ्गित प्रायः नहीं देतीं।

माँ–मैं पुनः आऊँगी, यह बात मैं नहीं कहती, और नहीं आऊगी यह भी नहीं कहती। मैं हमेशा कहती हूं कि अगर यह देह (शरीर) रहेगा और तुम लोग ले आओगे तो आऊँगी।

मैं–इच्छा करने पर क्या देह में रहा नहीं जा सकता?

माँ–वह तुम लोगों की इच्छा।

---

१. श्री सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय । आप पोस्ट आफिस में काम करते हैं ।

मैं – हम लोग कैसे तुम्हें देह में रख सकते हैं ?

माँ – माता–पिता किस तरह सन्तान की रक्षा करते हैं। संतान की मंगल–कामना करते हुए उनकी रक्षा करते हैं।

यह उत्तर सुनकर मैं मन–ही–मन आश्वस्त हो गया। माँ के शरीर–रक्षा का डर दूर हो गया। मैंने सोचा कि हम लोग जितने दिन चाहेंगे, उतने दिन हम लोगों के कल्याण के लिए शरीर में रहेंगी। उनका शरीर में रहना–न–रहना उनके सन्तानों की आकांक्षा पर निर्भर करता है।

भीड़ बढ़ती जा रही है देखकर प्रमथ बाबू ने माँ से नामघर में जाने का अनुरोध किया। माँ राजी हो गयीं। हम सब नामघर में जाकर बैठे।

शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञान

सभी लोग यथास्थान बैठ गये। श्रीयुक्त अखिलचन्द्र चक्रवर्ती महाशय ने माँ से प्रश्न किया – माँ, निर्दोषानन्द ने जिन्होंने इस आश्रम में कुछ दिनों तक कठोपनिषद् पाठ किया था, हम लोगों को उपदेश दिया था कि हम लोग हमेशा इस बात का चिन्तन करते रहे – 'मैं ही वह परमात्मा हूँ' लेकिन यह भाव हममें नहीं आता। इसके अलावा हम लोग उस विराट् पुरुष के बारे में कोई कल्पना नहीं कर पाते। कुछ भी ध्यान करते समय हमेशा तुम्हारी मूर्ति सामने आती है। कल रात को मुझे नींद नहीं आयी, केवल तुम्हारे उपदेशों की चिन्ता करता रहा। तुम्हारी मूर्ति आंखों के सामने तैरती रही। ऐसी हालत में मैं ही वह परमात्मा हूँ, ऐसा ध्यान कैसे कर सकता हूँ?

माँ–परमात्मा अनुभूति का विषय है। शास्त्रों के अध्ययन या बातें सुनकर उनके बारे में कोई धारणा नहीं बनाना चाहिए। शास्त्र केवल मार्ग बताते हैं। शास्त्र को मैं स्व–अस्त्र कहती हूँ। शास्त्रों में विभिन्न मत हैं। उनमें प्रत्येक सत्य है। ऋषियों ने अपनी साधना के जरिये जो कुछ अनुभव किया है, उसे शास्त्रोंमें लिखा है। जिसने जिस अवस्था की प्राप्ति की है, उसका वर्णन शास्त्र में लिख गये हैं। उसके पाठ या सुनने से बात समझ में नहीं आती। लेकिन जब उस अवस्था तक पहुँचा जाता है तभी शास्त्रों की बातें ठीक–ठीक समझ में आती हैं। इस दृष्टि से सभी शास्त्र सत्य हैं।

"पूर्वकाल में हमारे यहाँ चार आश्रम थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में शास्त्रों के अध्ययन से लोग जीवन के कर्तव्याकर्तव्य समझ लेते थे। उसी ज्ञान के आधार पर गृहस्थाश्रम को अपनाते थे और गृहस्थी में रहते हुए अपने ज्ञान को कार्य रूप में परिणत करते थे। गृहस्थाश्रम के कार्यो को समाप्त करने के बाद वानप्रस्थ अवलम्बन कर शास्त्रों से जो ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, उसे अनुभव का विषय बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसी से संन्यास–धर्म की प्राप्ति होती है। लेकिन इन दिनों ब्रह्मचर्य आश्रम का अभाव होने के कारण सब कुछ उलट–पुलट गया है। हमारा अभाव नहीं जा रहा हैं।"

"मैं पहले भी कह चुकी हूँ कि तुम लोग अभाव के स्वभाव में हो। तुम लोग जो कुछ लेकर हो, वह सब तो अस्थायी है। नौकरी से जो कुछ अर्थ प्राप्त करते हो, गृहस्थी में व्यय कर रहे हो। कुछ भी बचता नहीं। कल इस शरीर का फोटो खींचा गया। मैंने कहा–

'इस शरीर का फोटो क्या होगा? यह भी तो परिवर्तनशील है। आज जो कुछ है, दो दिन बाद उसमें परिवर्तन हो जायगा।' जो नहीं रहता, उसी को लेकर रहने का अर्थ है अभाव का स्वभाव। जो चिरस्थायी है, उसे पाने की चेष्टा करना चाहिए। उसे पाने के लिऐ एक लक्ष्य होना आवश्यक है। एक लक्ष्य होने के लिए मैं ही सब' अथवा 'सब तुम' इनमें एक भाव लेकर रहना चाहिए। बाद में देखा जाता है कि केवल एक ही वस्तु जगत् में है और कुछ नहीं है। जगत् की समस्त वस्तु में वे पूर्ण रूप में वर्तमान हैं।

"इसीलिए मैं कहती हूँ कि जीव भाव है–बद्धभाव। जैसे मैदान में घेरा डालकर घेरा बना लेते हो, लेकिन यह घेरा भी मैदान के भीतर ही है। मैं पुनः यह भी कहती हूँ कि जीव के भीतर अज्ञान का परदा रहने पर भी उसके दरवाजे खुले रहते हैं। जैसे हम लोग घर के भीतर बैठे हैं। खिड़की–दरवाजों से सूर्य का प्रकाश आ रहा है। हम लोग धूप देख रहे हैं, पर वह हमारे शरीर पर लग नहीं रही है। इच्छा होने पर दरवाजे से बाहर जाकर धूप में खड़े हो सकते हैं। जीव को बद्ध भाव से मुक्त होने के लिए अनेक दरवाजे हैं। गुरु कहो, मूर्ति कहो, ये सब दरवाजे हैं। इनके माध्यम से बद्ध भाव से मुक्त हुआ जा सकता है। चाहिए केवल एक लक्ष्य का होना। सभी परमात्मा के विकास हैं। इसीलिए गुरु को भगवान् समझना चाहिए। गुरु को मानव समझने या गुरु भगवान् हैं, यह बुद्धि न होने पर कुछ नहीं होगा। इसी प्रकार देवमूर्ति को शिला समझने पर कुछ नहीं होगा। इसीलिए मैं कहा करती हूँ कि जीव कभी भगवान् नहीं बन सकता। जीव तो जीव ही रहेगा। जब उसे हम भगवान् समझते हैं तब तो

वह भगवान् हैं। इसी प्रकार जब गुरु को भगवान् समझते हैं तब वे भगवान् हैं। फिर जब उन्हें मनुष्य समझते हैं तब वे मानव हैं। जिसके प्रति एक लक्ष्य होगा, उसी में भगवत् बुद्धि रहनी चाहिए।''

आजकल माताएँ लक्ष्मी पूजन करती हैं। उद्देश्य–काफी धन–दौलत हो। तुम लोग जैसे सरस्वती पूजा करते हो ताकि विद्या आवे और अर्थ उपार्जन कर सुख से गृहस्थी बसा सको। लेकिन मेरा कहना है कि इस तरह की पूजा से कोई लाभ नहीं, क्योंकि यह सब विद्या और धन चिरस्थायी नहीं होते। यह पूजा अभाव की पूजा है। पूजा अगर करनी है तो लक्ष्मी की न करके महालक्ष्मी की करनी चाहिए। इससे जो धन प्राप्त होता है, उसका क्षय नहीं होता। इसी प्रकार सरस्वती की पूजा न करके महासरस्वती की पूजा करनी चाहिए जिससे हमें ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो सके। इससे हम अभाव के राज्य से स्वभाव के राज्य में पहुँच जायेंगे। स्वभाव के राज्य में पहुँचने के लिए अपने यंत्र बनाना पड़ता है। तब समझ में आता है कि केवल एक मात्र वे ही हैं और वे ही सब कर रहे हैं।

''इसीलिए मैं बराबर कहती हूँ कि सभी लोग सर्वदा नाम करते रहे। जो दिन चला जाता है, वह नहीं आयेगा। कुछ नहीं हुआ कहकर निराश मत होओ। कारण कुछ हुआ नहीं, यह भाव प्रमाणित करता है कि कुछ हुआ है। चाहिए सिर्फ अभाव बोध। मुझसे नाम नहीं हो रहा है। मैं ठीक से नाम नहीं कर पा रहा हूँ। क्या करने से ठीक से नाम कर पा सकता हूँ? इस प्रकार के अभाव बोध होते ही सिद्धि पास आजाती हैं। लेकिन हममें अभाव बोध नहीं

है। हमें भूख नहीं लगती। जब तुम लोगों को भूख नहीं लगती तब दवा खाकर भूख बढ़ाते हो, भगवान् का नाम भी उसी प्रकार का है। नाम करते ही अभाव बोध होता है और उन्हें पाने के लिए लोग अस्थिर हो जाते हैं।''

ठीक इसी समय माँ को देखने के लिए दो-तीन वेश्याएँ आई। वे सब आकर अन्य महिलाओं के आगे-पीछे बैठ गयीं।

यह देखकर प्रमथ बाबू ने कहा-''मैं इन लोगों को महिलाओं के साथ बैठने नहीं दूँगा।''

इतना कहकर उन लोगों को प्रमथ बाबू ने हटा दिया। उनकी जगह पर अन्य महिलाएँ आकर बैठ गयीं। तभी दीदीमाँ आकर बखेड़ा करने लगीं। माँ की बातचीत बन्द हो गयी।

माँ प्रमथ बाबू की ओर देखती हुई हँसकर बोलीं-''क्यों पिताजी, अब ठीक हुआ?''

माँ मी बातों का अर्थ शायद यह था कि वेश्याओं को वेश्या कहकर घृणा करने से अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। माँ की बात सुन कर हम लोग हँस पड़े।

दो वेश्याएँ दूसरी ओर से माँ के पास जाकर खड़ी हो गयीं और अपनी बीमारी के बारे में कहने लगीं।

माँ ने उन लोगों से कहा-''इस शरीर से यह सब बातें नहीं निकलती। यह शरीर बड़ा अबाध्य है। माता जी, मेरा कहना है कि तुम लोग नाम करती रहो।''

ठीक इसी समय स्वामी शंकरानन्द जी आये और कहा–"माँ को पाँच मिनट के लिए ले जा रहा हूँ। एक महिला अपनी गोपनीय बातें कहना चाहती हैं। आप लोग पाँच मिनट प्रतीक्षा कीजिये।"

माँ ने कहा–"पाँच मिनट में होगा?"

माँ की बातों से अन्दाजा लग गया कि अब मां की बातें समाप्त हो गयीं। और वास्तव में फिर माँ से आगे कोई बात नहीं हो सकी इसके बाद माँ जब तक रहीं तब तक महिलाओं से घिरी रहीं। बीच–बीच में मां के फोटो खींचे जा रहे थे। हम लोग आश्रम के बाहर चहलकदमी करते रहे।

माँ का ढाका से बिदा होना

विदा का समय पास आ गया। मां घर से बाहर आकर आश्रम के आंगन में आकर खड़ी हो गयीं। सभी लोग उनके चरण स्पर्श कर प्रणाम करने लगे। भीड़ देखकर मैंने दूर से ही प्रणाम किया। प्रणाम करके ज्यों खड़ा हुआ त्योंही देखा कि मां मेरी ओर देखती हुई मन्द–मन्द मुस्करा रहीं हैं। उस समय भी श्री–चरणों में अगणित लोग प्रणाम कर रहे थे। मां की हँसी देखकर समझ गया कि मां ने मेरा प्रणाम स्वीकार कर लिया है। मां के निकट दूर या निकट का प्रश्न नहीं है। यह बात देहरादून में बता चुकी हैं। आज उसी को इन्होंने प्रत्यक्ष कर दिखाया।

मां मोटर में जाकर बैठ गयीं। आश्रम के बाहर आते ही खुकुनी दीदी से मुलाकात हुई। उन्होंने प्रणाम करने के बाद कहा–"दीदी कल की कहानी अधूरी रह गयी।"

दीदी ने कहा–"आपको शायद नहीं मालूम कि कल शाम को मां अचानक कह बैठीं–'तुम कहानी सुना रही थी। जाओ, उसे पूरी कर आओ।' मैं जब बाहर आयी तब आप दिखाई नहीं दिये।" इतना कहने के बाद दीदी हँसने लगीं।

इस हँसी का यह अर्थ है कि मां से कुछ भी छिपा नहीं रहता। क्योंकि दीदी जब मैदान में हमारे पास बैठी थीं तब उस समय मां आश्रम के शोरगुल के बीच थीं। दीदी को न तो उन्होंने देखा था और वे कहानी सुना रही हैं, यह भी नहीं जानती थीं। जबकि उनके निकट अज्ञात कुछ भी नहीं था। कहानी अधूरी रह गयी थी, इसे भी समझ गयी थीं। मां केवल अन्तर्यामी ही नहीं, वे तो "सर्वतोऽक्षि" भी हैं। उनके निकट कुछ भी छिपा नहीं है।

हम लोग मां को विदा देकर भग्न हृदय से घर लौट आये। इधर कुछ दिनों तक उत्तेजना में था। आज केवल अवसाद ही अवसाद रह गया।

❑❑❑